P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-5* (Part-1) August- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

वंचित समुदाय के शिक्षायी अनुभवः एक सैद्धान्तिक समझ

जय शंकर सिंह
शोधछात्र,
शैक्षिक अध्ययनशाला विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर
विश्वविद्यालय,
सागर, म.प्र.

सारांश

आधुनिक भारतीय समाज में जिस प्रकार से सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक आयाम वंचित समाज को बनाये हुये हैं उसमें विद्यालय और समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है। विद्यालय समाज का एक लघु रूप होता है (जॉन डिवी)। इस आधार पर हम कह सकते है कि जैसा समाज होगा उस प्रकार के विद्यालय की भी संरचना होगी। प्रस्तुत लेख में विद्यालय में भेदभाव, शिक्षक द्वारा भेदभाव, सहपाठियों द्वारा भेदभाव, पाठ्यपुस्तकों की भाषा, विद्यालय की गतिविधियों पर आधारित भेदभाव एवं मिड–डे–मिल योजना के अन्तर्गत मौजूद भेदभाव को शिक्षा के दृष्टि से समझने का प्रयास किया जायेगा। जिससे एक सैद्धान्तिक समझ बने एवं इन भेदभावों को दूर किया जा सके ताकि वंचित समुदाय शिक्षा की मुख्यधारा में बना रह सके और विकास के पायदान पर आगे बढ़ सके। वंचित समुदाय के शिक्षायी अनुभव को समझने के लिये सबसे पहले इस बात को समझा जायेगा कि आखिर वंचित कौन है? उक्त अध्ययन को समझने के लिये द्वितीयक स्रोत जैसे आत्मकथा, शोध पत्रों और अन्य स्रोत का उपयोग किया जायेगा जो पूरी तरह से वंचित समुदाय एवं शिक्षा प्रक्रिया के अन्तर्गत होगा।

मुख्य शब्द : शिक्षा, वंचित समुदाय, विद्यालय, समाज।

प्रस्तावना

वंचित समुदाय से अभिप्राय है अनुसूचित जातियों से, जो वर्तमान में 1231 जातियों को अनुसूचित जातियों[1] के रूप में अनुसूची में शामिल किया गया है। अनुसूचित जातियां भारतीय आबादी के 16.2 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है।[2] सरकार के अनुसूचित जाति का दशा सुधारने के निरन्तर और सत्त प्रयासों के बावजूद, यह सामाजिक समूह मानव विकास के किसी भी मापदण्ड से भारतीय समाज में सबसे गरीब और सबसे दबे हुए के बीच में वर्गीकृत किया जा रहा है।[3] अनुसूचित जातियों के प्रति सरकार का दृष्टिकोण मुख्य रूप से संविधान की भावना के अनुरूप है, जिसके प्रावधानों ने कानूनी तौर पर अस्पृश्यता की प्रथा और अस्पृश्यता से उत्पन्न भेदभाव को समाप्त किया था (अनुच्छेद 17)। संविधान कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है (अनुच्छेद 14)। अनुसूचित जातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा और सामाजिक अन्याय तथा सभी तरह के शोषण से उनको सुरक्षा प्रदान करता है (अनुच्छेद 46)। सरकारी सेवाओं में आरक्षण के माध्यम से विशेष उपाय प्रदान करता है, और लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्थाओं में सीटें भी सुरक्षित रखता है (अनुच्छेद 330 तथा 335, 73 वा संशोधन अधिनियम, 1992)। अन्त में संविधान वार्षिक आधार पर अनुसूचित जाति की सामाजिक और आर्थिक प्रगति की जांच और निगरानी करने के लिये, एक स्थायी निकाय की स्थापना का संकल्प करता है।

यह लेख अनुसूचित जातियों में शामिल बाल्मीकि समुदाय पर केन्द्रित है। इसके अन्तर्गत विद्याालय में भेदभाव, शिक्षक द्वारा भेदभाव, सहपाठियों द्वारा भेदभाव, पाठय, पुस्तकों की भाषा, विद्यालय की गतिविधयाँ, शिक्षक–कक्षा गतिविधि भागीदारी में भेदभाव, मिड–डे मिल योजना में भेदभाव पर केन्द्रित होगा।

किसी भी समाज की संरचना में अनेक भौतिक एवं अभौतिक तत्व शामिल होते हैं। समग्र सामाजिक संरचना पर विभिन्न भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक एवं भाषायी कारकों के प्रभाव को समझने के लिए शिक्षा एक ऐसा कारक है जो किसी भी समाज और राष्ट्र का निर्माण करने के लिये मानव को आवश्यक ज्ञान प्रयोजन की चेतना और विश्वास की भावना से ओत–प्रोत करके मानव जीवन को अर्थपूर्ण साधन प्रदान करती है। इन अर्थों में शिक्षा मानव संसाधन के विकास का महत्वपूर्ण साधन है।

''शिक्षा और समाज के बीच पारस्परिक निर्भरता का सम्बन्ध है। एक ओर शिक्षा सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्परा की धरोहर को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करती है, वही दूसरी ओर परिस्थितिक परिवर्तन उसे अनुकूलन का साधन बनने की प्रेरणा देता है। अपने मौजूदा स्वरूप में शिक्षा न केवल बदलाव को एक सषक्त माध्यम बनती है, बल्कि बदलाव की दिशा भी निर्धारित करती है, उसके विकल्प को जुटाती है, प्रविधिक साधन मुहैया कराती है और नवाचारों के लिये एक उर्वर भूमि तैयार करती है। शिक्षा सामाजिक बदलावों से प्रभावित भी होती है। किसी भी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आयामों में विस्तारित हो रहा समाज शिक्षा से यह उम्मीद करता है कि वह उस समाज विशेष को विकासशील बनाने में योगदान करेगी।''[4] परन्तु कई सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक अनुभव शिक्षा की भूमिका को वर्ग एवं जातीय परिस्थिति के सन्दर्भ में विभेदकारी एवं भेदभाव मूलक पाते हैं।

कश्यप (2010)[5] के अनुसार ''भारतीय संविधान देश के समस्त नागरिकों की न्याय, स्वतंत्रता और समानता दिलाने तथा उन सबमें बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्पित है। न्याय की संकल्पना सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के रूप में की गई है। स्वतंत्रता में विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सम्मिलित है और समानता का अर्थ है प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता का अधिकार।''

भारतीय संविधान जहाँ एक ओर समाज के सभी वर्गों को प्रावधानिक उपबन्धों के तहत समान अवसर एवं भागीदारी मुहैया कराता है वहीं दूसरी ओर जमीनी यथार्थ पर वंचित वर्ग अभी भी अपने शोषण एवं वंचना के दुष्चक्र से स्वयं को बाहर निकालने के लिये लगातार संघर्षरत है। यह संघर्ष तब और भी जटिल हो जाता है जब इसमें अस्मिता हनन' एवं व्यक्तिगत तथा सामूहिक विकासीय अवसरों को लगातार अवरूद्ध किए जाने के लिये 'अन्यों' द्वारा संगठनिक एवं संरचनाबद्ध प्रयास किये जाते हैं। इन प्रयासों में 'छुआछुत' एवं 'बहिष्करण' एक प्रमुख स्थिति है।

इस स्थिति का सामना प्रायः वंचित समुदायों के लोगों की प्राचीनकाल से ही सामाजिक, सांस्कृतिक उपबन्धों से वैधीकृत मूल्य परम्पराओं के नाम पर करना पड़ता है। इसे अभी जल्दी ही घटित कुछ घटनाओं के माध्यम से जाना जा सकता है।

कुल्लू (हिमाचल प्रदेश)[6] के आनी थाना क्षेत्र में जाति भेदभाव का मामले में जागी पुलिस, अब अध्यापकों से कर रही गहन पूछताछ।

जींद (हरियाणा)[7] में सरकारी अध्यापक जाति, लिंग व गरीब बच्चों से करते भेदभाव।

राँची (झारखण्ड)[8] बच्चों के साथ भेदभाव न करें स्कूल : सी.एम. राँची में जितिशा खेतान जो वंचित वर्ग से आता था को स्कूल प्रबंधन ने प्रवेश देने से मना कर दिया था। उसके बाद शिकायत करने पर मुख्यमंत्री एम. रघुवरदास ने सभी स्कूल प्रबन्धन को सख्त हिदायत दी कि बच्चों के नामांकन में किसी भी प्रकार का भेदभाव न करें।

ये कुछ घटनायें दलितों की स्थिति तथाकथित समतामूलक समाज में बतलाने के लिये संभवतः बानगी है। इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि दलित समुदाय की वंचना और उत्पीड़न का एक राष्ट्रीय चरित्र है जो कमोवेश देश के हर प्रान्त व भारत में चरितार्थ होता रहा है। समुदाय की वंचना और उत्पीड़न भी एक सा राष्ट्रीय चरित्र लिए हुए है सामाजिक यथार्थ संभवतः यही इनका है।

विद्यालय, अध्यापक, छात्र एवं गतिविधियों पर आधारित भेदभाव

ह्यूमन राइट्स वाच रिपोर्ट (2014)[9] नई दिल्ली ने भारत हाशिए पर रह रहे बच्चों को शिक्षा से वंचित करना'' में चार राज्यों उ.प्र. आन्ध्रप्रदेश, बिहार, दिल्ली के दलित, आदिवासी तथा मुस्लिम बच्चों के विरूद्ध किए जा रहे भेदभाव को देखने का प्रयास किया है, रिर्पोट की लेखिका जयश्री बजोरिया का कहना है कि ''भारत की उसके सभी बच्चों को शिक्षित करने की विशाल परियोजना (निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून, मिड–डे–मिल, इत्यादि) अध्यापकों तथा स्कूलों के अन्य कर्मचारियों द्वारा निर्धन एवं हाशिए पर रह रहे बच्चों के विरूद्ध गहराई तक जड़े जमा चुके भेदभाव का शिकार बनने के खतरे का सामना कर रही है।'' अध्यापक उन्हें प्रोत्साहित करने के बजाय प्रायः उनकी उपेक्षा करते है और उनसे दुर्व्यवहार भी करते है उन बच्चों को प्रायः कक्षा में सबसे पीछे या अपमानजनक नामों का प्रयोग करके बेइज्जत किया जाता है और भोजन भी आखिर में परोसा जाता है। उनसे शौचालय तक साफ कराए जाते है जबकि ऐसा नही होना चाहिये।

ह्यूमन राइट्स वाच रिपोर्ट कुछ प्रमुख शैक्षिक अनुभव के उद्धरण, जिसमें बालकों के मूल नाम नहीं है जो नाम है वह काल्पनिक हैं–

''अध्यापिका हमें हमेशा कमरे के एक कोने में बिठाती है और चाबी फेंककर मारती हैं (जब वह क्रोधित होती है)। जब सब बच्चों को खाना मिल जाता था तो हमें तभी मिलता था जब कुछ बच जाता था धीरे–धीरे हमने स्कूल जाना छोड़ दिया।''

– श्याम उ.प्र. का एक 14 वर्षीय दलित बालक।

''जब भी अध्यापक नाराज होते हैं, वे हमें मुल्ला कह कर बुलाते हैं। हिन्दू लड़के भी हमें मुल्ला कहते हैं क्योंकि हमारे पिता दाढ़ी रखते हैं। जब वे हमसे इस तरह बात करते हैं तो हम अपमानित महसूस करते हैं।'' –जावेद दिल्ली का एक 10 वर्षीय मुस्लिम लड़का।

''हमसे अध्यापक की टांगों पर मालिश करने को कहा जाता था। यदि हम मना करते तो वह हमें पीटते थे। वहाँ अध्यापकों के लिए एक शौचालय था, उसकी सफाई हमसे कराई जाती थी।'' –नरेश, बिहार का एक 12 वर्षीय दलित लड़का

''अध्यापिका ने हमसे दूसरी ओर बैठने के लिए कहा। यदि हम अन्य बच्चों के साथ बैठते हैं तो वह हमें डांटती है और अलग बैठने को कहती है। अध्यापिका भी हमारे साथ नहीं बैठती क्योंकि वह कहती है कि हम गन्दे हैं।'' –पंकज, उत्तर प्रदेश का एक आठ वर्षीय आदिवासी बालक

इस प्रकार ह्यूमन राइट्स वॉच के उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारतीय विद्यालयों में आज भी जाति आधारित भेद भाव व्याप्त है जिसके कारण वंचित समुदाय के बालक/बालिका विद्यालय छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं।

नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकोनामिक्स के भारतीय मानव विकास और अमेरिकी मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय की भागीदारी से दलित समुदाय की स्थिति को जानने के लिये किए गए सर्वेक्षण की रिपोर्ट (2014)[10] ने रेखांकित किया कि छुआछुत को गैर कानूनी घोषित हुए छह दशक से अधिक हो जाने और राष्ट्रीय आन्दोलन के लगभग आठ दशक बाद भी भारतीय समाज के एक चौथाई हिस्सा छुआछूत का व्यवहार कर रहा है। और कानून के होते हुये भी इस तथ्य को कबूल करता है। ग्रामीण समाज का लगभग हर तीसरा परिवार तथा शहरी भारत का ही पाँचवा परिवार छुआछूत करते पाया गया। इतना ही नहीं, बल्कि अपमानित होने वाले दलित खुद भी छुआछुत बरतते है। इस रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया कि कानून को सख्ती से लागू किया जाये तथा अस्पृश्यता के शिकार लोगों के हाथों में राजनीतिक ताकत दी जाये और शिक्षा के माध्यम से सामाजिक सुधार आन्दोलन को एक विकल्प बनाया जाये।

भले ही 21वीं सदी का समाज अत्याधुनिक होने की परिभाषा पा चुका है, इसके बावजूद इस समाज में कुछ ऐसी विसंगतियाँ (गैर–बराबरी, अस्पृश्यता, असंवेदनशीलता, अमानवीयता, शोषण आदि) विद्यमान हैं जो इस पर लगातार नकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

इसी तरह दलित समुदाय की शैक्षिक स्थिति को समझने के लिये किये गये अध्ययन में झा और झींगरन (2002)[11] ने बताया कि दलित बच्चे अनावश्यक रूप से शारीरिक एवं मानसिक यातना झेलते हैं। शिक्षक दलित बच्चों में या उनकी परिस्थितियों में सकारात्मक बदवाव को लेकर कोई खास रूचि नहीं दिखाते हैं, उनके अनुसार 'दलित'' अकर्मण्य' है'' जन्म आधारित भेदभाव मानव जाति के एक बड़े हिस्से पर गंभीर हिंसात्मक प्रभाव डालता है इसी अध्ययन में आगे बताया है कि दलित बच्चों के लिये शिक्षा एक लम्बी प्रक्रिया है और गरीब परिवारों के लिये लम्बी अवधि तक बच्चों को स्कूल भेजना संभव नहीं होता है।

अग्रवाल (1994)[12] ने अनुसूचित जातियों के साक्षरता की प्रवृत्तियां में बताया कि ब्रिटिश काल में अंधोमुखी निस्पंदन के सिद्धांत ने अभिजात्य वर्ग को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित की उपेक्षा की परिणामतः गरीब व निचले वर्ग शिक्षा से वंचित रहे और इस प्रकार शिक्षा को उच्च जातियों को विशेष अधिकार ठहराने वाली परंपरागत जाति प्रथा और अभजात्य वर्ग को शिक्षा देने की ब्रिटिश नीति में एक दूसरे को बल पहुँचाते हुऐ भारत में एक अत्यधिक असमान शिक्षा व्यवस्था को जन्म दिया जिसमें छात्रों द्वारा भेदभाव, अध्यापक द्वारा भेदभाव वे अन्य स्कूली गतिविधियों में भेदभाव को सहन करना पड़ता है। जिससे ऐसी अनेक अनूसूचित जातियां है। जिनमें साक्षरता दर शून्य है।

बी.बी.सी. (2011)[13] 'जानलेवा है जातिगत भेदभाव' द्वारा प्रकाशित लेख में बताया गया है कि ऑल इण्डिया इस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज (एम्स) में छात्रों के साथ जाति के आधार पर भेदभाव होता है। जिसकी पुष्टि थोरात कमेटी ने किया था। मध्य प्रदेश के एक छोटे से गाँव कुण्डेश्वर का बालमुकुन्द एम्स का छात्र था। उसके साथ जाति के आधार पर छात्रों एवं अध्यापकों के द्वारा भेदभाव किया जाता था उसे नीचा भी दिखाया जाता था। इससे वह परेशान होकर अपने छात्रावास के कमरे में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लिया। इस तरह के राष्ट्रीय संस्थानों में भी जाति पीछा नहीं छोड़ रही है जो युवा देश के विकास में अपना योगदान दे सकता था वह जातिगत भेदभाव के कारण फाँसी लगाने पर मजबूर हो जाता है।

होलजवर्थ एवं अन्य (2006)[14] स्कूल में छुआछूत गुजरात के स्कूलों में दलित बच्चों के शैक्षिक अनुभव। शोध शीर्षक में पाया गया कि दलित बच्चों को स्कूल में बैठने, मिड–डे–मिल योजना, पीने के पानी, स्कूल के अन्य कार्य, अध्यापकों का व्यवहार, सहकर्मी उपचार, सांस्कृतिक गतिविधियों में भागीदारी, छात्रवृत्ति, पाठ्यचर्या, एवं यातायात आदि बिन्दुओं पर अध्ययन हुआ और इन सभी में भेदभाव पाया गया। इसी अध्ययन से प्राप्त दलित बच्चों के शैक्षिक अनुभव उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है– ''एक लड़की बताती है कि अध्यापक ने बताया कि वह अपनी ही जाति की लड़की के साथ पीछे वाली सीट पर बैठे।''

लीला गोसाल ने बताया कि ''हरिजन कमरे की सफाई करेंगे और डारबारस बैठते हैं और यह आदेश देते हैं कि यह साफ करो वहाँ साफ करो। वे क्यों नहीं यह करते हैं? क्या वे केवल बैठने के लिये आते हैं? यह कहने पर हरिजन बच्चों को और साफ–सफाई का काम दिया जाता है।''

अकादमिक ग्रेडिंग के बारे में (गोविन्द गोसाल छात्र) बताता है कि यद्यपि वे (डारबारस) कुछ भी लिखे या नहीं लिखे, यदि वे कुछ जानते हैं अथवा नहीं वे पास हो जाते हैं जबकि हम (हरिजन) कुछ जानते हैं तब वे हमको पास करते हैं यदि हम कुछ जानते नहीं तो तुरन्त वे फेल कर देते हैं।

मिलन कटारिया ने बताया कि वे (अध्यापक) हमको कक्षा में बैठने देते हैं लेकिन कभी भी हमसे प्रश्न नहीं पूछते।

प्रवीण कटारिया कहता है कि 'अध्यापक ये कहते हैं कि तुम निम्न जाति के हो इसलिये मॉनीटर नहीं बन सकते हो। डारबारस और पटेल मॉनीटर हैं हम लोग नहीं।'

'मैं स्कूल जा रहा हूँ क्योंकि मैं स्वयं का विकास करना चाहता हूँ। मैं अधिक से अधिक ज्ञान पाना चाहता हूँ। मेरे जीवन का उद्देश्य है कि मैं अपने समुदाय का विकास कर सकूं इसलिये मैं पहले स्वयं ज्ञान प्राप्त कर रहा हूँ। मैं सोचता हूँ कि यह कठिन कार्य है। यदि मैं अपने गाँव में कुछ बदलाव कर सकता हूँ तो मैं छुआछूत को हटाना चाहूँगा। मैं निश्चित हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति यदि स्कूल जायेगा तो स्कूल में कोई छुआछूत नहीं होगा।' – (नरेश कटारिया कक्षा 11 का दलित छात्र)

इस प्रकार के कथनों से स्कूली संरचना में व्याप्त भेदभाव की जड़े सामने आती हैं जो एक सांस्कृतिक विविधता वाले राष्ट्र के लिये हानिकारक है।

आत्मकथाओं में वंचित समुदाय के शिक्षायी अनुभव

वाल्मीकि (2003)[15] अपनी आत्मकथा 'जूठन' में अपने शिक्षायी अनुभव को साझा करते हुए बताते हैं कि ''शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् दलितों के शिक्षित वर्ग ने अपनी जातीय अथवा पारंपरिक मान्यताओं से अपने को अलग कर दिया है और ऐसा उन्होंने किसी सुधार–वादी दृष्टिकोण के तहत नहीं किया बल्कि हीन भावना के कारण किया। पढ़े–लिखे लोगों मे यह हीन भावना कुछ ज्यादा ही है जो समाजिक दबावों के कारण है।'' इन्होंने बतलाया कि–दलितों में जो पढ़–लिख गये हैं उनके सामने एक भयंकर संकट खड़ा हुआ है 'पहचान का सकंट' जिससे उबरने का वे तात्कालिक और सरल रास्ता ढूँढ़नें लगे हैं। वे अपने वंशगोत्र को थोड़े ही संबोधनों के साथ अपने नाम के साथ जोड़ने लगे हैं (अथवा जातीय उपनाम लिखते ही नहीं)। इनके पीछे स्वयं की पहचान की तड़प है जो 'जातिवाद' के कारण 'प्रतिक्रिया' स्वरूप उपजी है। दलित पढ़–लिखाकर समाज की मुख्यधारा से जुड़ना चाहता है परन्तु सर्वण उन्हें इस धारा से रोकता है, उनसे भेदभाव करता है, अपने से हीन मानता है, उनकी बुद्धिमत्ता, योग्यता कार्यकुषलता पर संदेह किया जाता है।

तुलसीराम (2014)[16] अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया में अपने शैक्षिक अनुभवों को व्यक्त किया–'मुंशीजी की चमरकिट' वाली गाली इतना भय पैदा कर देती कि अन्तोगत्वा मैं स्कूल जाने के नाम पर रोने, चिल्लाने लगता था। पिताजी ऐसे अवसरों पर पीटते हुए मुझे स्कूल ले जाते और साथ में कहते जाते : ई–स्कूल ना जइबा त चिठियां के पड़ी।' यहाँ पर लेखक को उसका परिवार चिट्ठी पढ़ने लायक बनाने के लिये पढ़ाते हैं परन्तु दलित समाज में हर जगह एक ही प्रकार की परिस्थिति नहीं होती। दलित समाज के अधिकतर बच्चें स्कूल में इस प्रकार की पीड़ा को झेलते हुए स्कूल छोड़ने पर बाध्य हो जाते है।

इसी क्रम में स्कूल और अध्यापक व अन्य छात्रों के बारे में वर्णन करते हुये दास (2011)[17] लिखते हैं कि ''अंग्रेजी राज्य में स्कूलों में दाखिल पर कोई रूकावट नहीं थी, परन्तु स्कूल हिन्दू या मुसलमानों के हाथ में ही थे। मैं अगर स्कूल मैं दाखिल कर लिया जाता था तो हिन्दू अपने बच्चों को स्कूल से हटा लेते थे और अध्यापकों पर दबाव डाला जाता था कि वे मुझे अपनी स्कूल में भर्ती न करें या मुझे स्कूल से निकाल दें। अध्यापक भी नहीं चाहते थे कि मैं पंढू। चूंकि वे जहां एक ओर मेरे छूने से डरते थे वहीं दूसरी ओर तथाकथित ऊँची जाति के विद्यार्थियों के माता–पिता को नाराज नहीं करना चाहते थे। इसलिये अध्यापकों की कोशिश रहती थी कि मैं जल्दी से जल्दी स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ। वे मुझे दूसरे बच्चों के साथ नहीं बैठने देते थे। दूसरे विद्यार्थी मुझसे वैसे ही घृणा करते थे जैसे उनके माता–पिता मेरे माता–पिता से। उन्हें हर समय इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं उनके खाने पर मेरा साया न पड़ जाए। या मैं उसे छू न दूं। छूने पर सख्त सजा मिलती थी। इस प्रकार वे सदा इस कोशिश में रहते थे कि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ और फिर कभी शिक्षा प्राप्त करने का गलत इरादा न करूं।''

आगे कक्षा कक्ष के सीखने–सीखाने के बारे में भगवानदास लिखते है कि कक्षा में मुझे सिखाने, पढ़ाने की कोई कोशिश नहीं की जाती थी। अगर कक्षा के बाहर अपने मैले से टाट पर बैठकर सुन–सुना कर मैं कुछ समझ लेता था और सवालों का ठीक–ठीक उत्तर दे देता था तो अध्यापक दूसरे लड़कों को ताना देते हुए कहते थे ''देखो यह मेहतर या चूहड़े का लड़का भी इस प्रश्न को हल कर कसता है तुम ब्राह्मण या खत्री, सैयद और पठान होकर भी इसको हल नहीं कर सकते''[18] आदि।

इसी स्कूल की फीस व अध्यापकों के रवैये के बारे में लिखते है कि ''स्कूल में फीस देनी पड़ती थी, किताबे खरीदनी पड़ती थी। इसके अलावा और भी खर्च करना पडता था जो मरे निर्धन माता पिता बर्दाशत नहीं कर सकते थे। जिससे पढ़ाई में मै पीछे रह जाता था। स्कूल में मेरे अध्यापक तथा सहपाठी मरे पिछड़ेपन मेरी गरीबी और कमजोरियों पर हंसते थे। उधर घर वाले भी यही कहते सुनाई देते थे ''क्या करेगा पढ़–लिखकर कौन सा डिप्टी कलेक्टर बनना है। भंगी का लड़का तो भंगी ही रहेगा, वही झाड़ू बगल में होगा, गन्दगी से भरा टोकरा सिर पर।''[19]

पाठ्यपुस्तकों पर आधारित भेदभाव

कुमार (2013)[20] ने अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का शैक्षिक अनुभवशीर्षक से लिखे गये लेख में बताया कि पाठ्यक्रम में इन जातियों के प्रतिनिधित्व के तरीके सही नहीं है। इनके सामाजिक जीवन से जुड़े टापिक कम हैं तथा उनके संस्कृति को सही तरीके से प्रस्तुत नहीं किया गया है। जिससे अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चे रोजगार के लायक बनने के काफी पहले ही स्कूल जाना छोड़ देते है। और उनका शैक्षिक अनुभव उन्हें अहसास कराता है कि वे वही हैं जो होने का उन पर आरोप लगाया जाता है। उन्होंने सुझाव दिया है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चों की समस्याओं का समाधान उनकी दृष्टि में बदलाव लाकर और शेष सभी बच्चों की दृष्टि को पूर्ववत् रखकर नहीं किया जा सकता। यहाँ आवश्यक है कि शिक्षा द्वारा सभी बच्चों के सामने दिये जाने वाले समाज की तस्वीर में बदलाव लाने की है साथ ही अलग पाठयक्रम या सामान्य पाठ्यक्रम का पुनर्गठन हो।

कांचा इलाइया (1996)[21] के अनुसार निम्न जातियों के ज्ञान और भाषा का आधार उनके आवास के आस–पास के सामाजिक–सांस्कृतिक और उत्पादन प्रक्रियाओं मे रहता है तथा इनके इर्द–गिर्द ही संरचित होता है। यह ज्ञान और इससे जुड़ा कौशल आधारित शब्द भण्डार जो कि बहुत अधिक विकसित होते हैं उन्हें स्कूल की पाठ्यचर्या में कोई स्थान नहीं दिया जाता है। ना ही कहानियों, संगीत, गीतों, मूल्यों, कौशलों, ज्ञान, परम्पराओं और सांस्कृतिक तथा धार्मिक चलनों को। वे अपने अध्ययन में आगे बताये हैं कि विद्यालय की पहली कक्षाओं से महाविद्यालय तक हमारी तेलुगु किताबें इन हिन्दू कथाओं से भरी पड़ी थी। कालिदास हमारे लिये उसी

तरह अजनबी था जैसे शेक्सपियर का नाम। पाठ्यपुस्तकों की भाषा वैसी ही थी जैसी कि हमारा समुदाय बोला करता था यहाँ तक कि कुछ प्रारम्भिक मूल शब्द भी भिन्न थे। पाठ्यपुस्तक की तेलुगु ब्राह्मणों की तेलुगु थी, जबकि हम उत्पादन–आधारित सम्प्रेषक तेलुगु में आदी थे। यहाँ बोली का अन्तर मात्र ही नहीं है बल्कि यह भाषा के स्वयं के अन्दर का अन्तर है।

मध्यान्ह भोजन योजना में भेदभाव

वेस्ली (2017)[22] ने विद्यालयों में होने वाले भेदभाव के कई रूप बताये हैं यह भेद भाव समाज के वंचित तबको को न सिर्फ विद्यालय की पहुँच से दूर करता है बल्कि उनमें इस भावना को भी और मजबूत करता है कि वे समाज के उस वर्ग से है जिन्हें अछूत कहा जाता है। मुख्य रूप देखा जाये तो दलित छात्रों में विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति का प्रमुख कारण उनका सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलू है।

दलित बच्चों के साथ सामाजिक आधार पर होने वाले भेदभाव माध्यान्ह भोजन योजना के अन्तर्गत भी पाया जाता है। प्राथमिक रूप से सरकार का यह लक्ष्य है कि वह विद्यालय में होने वाले भेदभाव को बचपन में ही समाप्त कर दे किन्तु सामाजिक आधार पर होने वाले भेदभाव वर्तमान में भी मौजूद है। जैसा कि वेस्ली (2017)[23] द्वारा अपने अध्ययन में देखा गया है कि मध्यान्ह भोजन के अंतर्गत बच्चे खाना खाते समय अपने सामाजिक, संस्कृति को ध्यान में रखते है तथाकथित उच्च जाति के बच्चे दलित बच्चों के साथ बैठना पसन्द नहीं करते हैं, क्योंकि ग्रामीण समाज में प्रचलित शुद्धता एवं अशुद्धता जैसी अमानवीय प्रचलन इसके लिये उत्तरदायी है। इस अध्ययन में अध्ययनकर्ता ने बताया है कि खाना बनाने वाली नियुक्त रसोइया जो दलित समुदाय से थी को कुछ लोगों के विरोध के कारण हटा दिया गया तथा उसके स्थान पर दूसरी रसोइया की नियुक्ति की गयी जो कि अन्य पिछड़ा वर्ग से थी और सरपंच भी अन्य पिछड़ा वर्ग से सम्बन्धित था।

शाह (2017)[24] मिड–डे–मिल स्कीम एण्ड डिस्क्रिमीनेषन

एन एनालिसस, में बताया कि मिड–डे–मिल योजना की कमी एवं मजबूती क्या है, यह समझने का प्रयास किया गया और इसके कारण किस प्रकार की विषमता समाज में आ रही है। अध्ययन में यह पाया गया कि मिड डे मिल योजना की शुरूआत प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकीकरण, बच्चों को पौष्टिक भोजन देना, ड्राफ्टआउट कम करना आदि था। काफी चीजों में सफल होने के बावजूद यह पाया गया कि कुछ जगहों में जातिगत विषमता आ गयी है। वहाँ पर जाति आधारित बैठने की व्यवस्था, अलग–अलग तरह का खाना तथा खाना परोसने में भी भेदभाव किया जा रहा है। साथ ही साथ दलित रसोईयों का होना भी एक समस्या है।

वर्मा (2017)[25] 'विद्यालयों में जातिगत भेदभाव' देश व समाज के लिये घातक लेख में बताया है कि देश व प्रदेश की स्कूलों में छुआछूत विद्यमान है जिसमें मध्यान्ह भोजन में भेदभाव, अलग–अलग चूल्हे पर भोजन बनाने, अलग–अलग बैठाकर भोजन परोसने आदि रूप में स्कूली संरचना में पाया जाता है। शिक्षक खुद भी जातिगत व अस्पृश्यता का भेदभाव करते हैं। इस तरह से विद्यालयों में जातिगत भेदभाव देश व समाज की अखण्डता व एकता के लिये खतरा है।

सेबअस्टिन (2013)[26] द्वारा 'कास्ट डिस्क्रिमीनेशन मारस मिड–डे–मिल स्कीम' के तहत अपने लेख में बताया है कि मध्यान्ह भोजन योजना का मुख्य उद्देश्य सामाजिक विषमता को मिटाना एवं गरीब बच्चों को पढ़ाई के लिये प्रोत्साहित करना था इसी योजना के अंतर्गत 2004 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार विद्यालयों में दलित एवं आदिवासियों को खाना बनाने के लिये रखा जायेगा ताकि उनको रोजगार मिल सके। लेकिन इन दोनों में से कुछ भी पूरा होता नजर नहीं आ रहा है।

इस अध्ययन में यह पाया गया है कि बिहार में उच्च जाति के बच्चे अपने खाने की प्लेट अलग से लाते हैं, मध्य प्रदेश की कुछ स्कूलों में मध्यान्ह भोजन के समय जाति के अनुसार बैठाया जाता है, उत्तर प्रदेश में मध्यान्ह भोजन में नियुक्त रसोइया को लेकर भी जातिगत भेदभाव पाया गया जिसमें दलित या आदिवासी महिलाओं को उस स्कूल में रोजगार नहीं मिलता जहाँ उच्च जाति के बच्चे ज्यादा पढ़ते हैं। इस प्रकार से मध्यान्ह भोजन में ज्यादातर लोगों की शिकायत जातिगत विभाजन को लेकर थी।

निष्कर्ष

विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सरकार के द्वारा बनायी गयी समस्त शैक्षिक योजनायें एवं मिड–डे–मिल योजना में रसोइयों की नियुक्ति का फैसला सुप्रीम कोर्ट (2004), के कारण यह पाया गया कि ऊपरी तौर पर वंचित समुदाय के बच्चों के समान शिक्षा एवं समान अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। इन्हीं अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि जमीनी तौर पर वंचित समुदाय और भी ज्यादा दोहरे अभिशाप से ग्रस्त हो चुका है। एक तो दलित होने की वंचना को वह जन्म से ही झेल रहा था अब साथ–साथ उसे उच्च वर्ग के बच्चों के साथ पढ़ने की पीड़ा भी झेलनी पड़ रही है। वह जातिगत विषमता को झेलते–झेलते वह बिल्कुल चकनाचूर हो जाता है। अपनी इस मानसिक यंत्रणा को वह किसी से कह भी नहीं पाता नतीजतन ऐसे बच्चे आगे चलकर असन्तुलित युवा के रूप में विकसित होते हैं।

जिस शिक्षा से समाज के बदलाव की बात कही जाती है वह शिक्षा बेमानी साबित हुई है। आजादी के लगभग सात दशक से ज्यादा बीतने के बाद भी जातिगत संरचना कमजोर होने के बजाय आधुनिक तौर तरीके से मजबूत हुई है, जो स्कूली संरचना में स्पष्ट दिखायी दे रही है। पाठ्यक्रम तथा पाठ्यचर्या में भी वंचित समुदायों का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर है। जब शिक्षा की यह दशा है तो हम यह कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि समाज भी प्रगतिशील एवं समावेशी होगा?

संदर्भ ग्रंथ

1. *List of Scs are as per the constitution (SC) order 1950. For a detailed classification, See Department of Personnel, Government of India 2003, Brochure on Reservation and concerrions*

for Scheduled Castes, Scheduled Tribes and other Backward Classes, Physically Handicapped, Ex-Serviceman, Sportmen and Compassionate Appointment, pp 411-415, New Delhi, Nabhi Publications.

2. *Census of India, 2001, New Delhi: Registar General of India.*
3. *थोरात, सुखदेव, भारत में दलित : एक समान नियति की तलाश, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 1*
4. *दुबे, श्यामाचरण, शिक्षा, समाज और भविष्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1994, (प्रस्तावना)।*
5. *कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 2010, पृ. 43*
6. *https://himachal.punjabkesri.in/himachal-Pradesh/News/Police-i-place-of-students-with-racial-dircrimination-760942*
7. *https://teacherharyana.blogspot.in/2016/08/jind-director-meeting.html.*
8. *https://www.bhaskar.com/Jharkand/ranchi/news/c-181-LCL-admision-done-of-jitisha-khetan-after-cm-order-NOR.html*
9. *http://www.hrw.org/hi/news/2014/04/22/25343*
10. *मोहन, अरविंद, वैश्वीकरण के बाद भी छुआछूत मौजूद, सम्पादकीय दैनिक भास्कर, भोपाल, 3 दिसम्बर 2014, पृ. 8*
11. *Jha and Jhingran,The Schooling of Dalit children: A Pandora's Box, in Elementary Education for the Poorest and other Deprived Groups. The real challenge of Universalization, Centre for Policy Research, New Delhi, 2002.*
12. *अग्रवाल, यश अनुसूचित जातियों के साक्षरता की प्रवृत्तियाँ, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 1, अंक–2, न्यूपा, नई दिल्ली, 1994, पृ. 25–28*
13. *https://www.bbc.com/hindi/india/2011/09/110929-caste-sucide-da*
14. *Halzwarth, Simone, Soumya, Kanthy, et al. Untouch able in school experiences of Dalit children in School in Gujrat, Hosted by Institute for Dalit Studies, New Delhi, 2006, p. 1-48*
15. *वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन (आत्मकथा), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, भाग–1, पृ. 75*
16. *डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 24*
17. *दास, भगवान, मैं भंगी हूँ : आत्मकथा, गौतम बुक डिपो, दिल्ली 2011, पृ. 58*
18. *वही, पृ. 59*
19. *वही, पृ. 60*
20. *कुमार, कृष्ण, अनुसूचित जातियों और जनजातियों का शैक्षिक अनुभव, शिक्षा का समाजशास्त्रीय सन्दर्भ, प्रकाशक ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 2013, पृ. 327–344*
21. *इलिया, कांचा (1996), व्हाइ आई एम नॉट ए हिन्दू : ए शूद्र क्रिटिक आफ हिन्दूत्व फिलॉस्फी, कल्चरल एण्ड पॉलिटिकल इकोनॉमी, कोलकाता, समय।*
22. *W.S.J., Wesly, Kumar, The forms of exclusion of School: A case of dalit children in hydrabad Slums, IORS, Journal of Huminites and Social Science, Vol. 22, Issue-09, 2017, pp. 14-20.*
23. *वही, पृ. 19–20*
24. *Shah, Priyambada, Mid-day-Meal Scheme and Discrimination: An Analysis IERJ, Vol. 03, No. 06, 2017, pp. 26-27.*
25. *https://www.punjabkesari.in/blogs/news/schools-racial-discrimination-fatal-to-the-country-and-society-578782*
26. *https://www.ucanews.com/news/caste-discrimination-mars-midday-meal-Scheme/69040*
27. *शर्मा, संजय, जातिगतिशीलता एवं शिक्षा, यश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2014, पृ.–10.11*